श्रीमती आशापूर्णा देवी

Shrimati Ashapurna Devi

श्रीमती आशापूर्णा देवी को महत्तर सदस्य के रूप में आज अपना सर्वोच्च सम्मान प्रदान कर साहित्य आकदेमी स्वयं को गौरवान्वित कर रही है। श्रीमती आशापूर्णा देवी बाङ्ला के सर्वोत्कृष्ट साहित्यकारों में सर्वमान्य हैं।

आशापूर्णा देवी का जन्म 8 जनवरी 1909 को कलकत्ता में हुआ। आपका बचपन नगर के उत्तरी भाग में लगभग पचास सदस्यों वाले एक विशाल परिवार में व्यतीत हुआ। परिवार अत्यंत रुढ़िवादी था और उसमें लड़कियों की औपचारिक शिक्षा को प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। अपने शैशव में आशापूर्णा देवी प्राय: अपने भाइयों के समक्ष बैठी रहतीं और उन्हें ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से अपनी प्रवेशिकाएँ पढ़ते हुए निहारा करतीं। वह अपने भाइयों के उच्चारण और पुस्तकों के भाषिक प्रतीकों को परस्पर जोड़ते हुए, तीन वर्ष की वय पूरी होने से पहले ही बाङ्ला वर्णमाला से परिचित हो गयीं। किन्तु इससे एक विचित्र परिस्थिति पैदा हो गयी। वे पुस्तकों को उल्टी दिशा से तेज़ी से पढ़ जातीं, किन्तु सीधे अक्षरों को वे न पढ़ पातीं। अपने भाइयों की अनुपस्थिति में यह छोटी बच्ची उनकी पुस्तकें लेकर बैठ जाती और इस प्रकार उसने अक्षरों को पहचानना और पढ़ना सीखा। फलस्वरूप तीन वर्ष की होते-होते वह पुस्तकों को भलीभाँति पढ़ना सीख गयीं।

आशापूर्णा देवी अभी बालिका ही थीं, जब उनके पिता हरेन्द्रनाथ गुप्त अपनी पत्नी सरलासुन्दरी देवी, तीन पुत्रों और तीन पुत्रियों के साथ किराये के एक मकान में रहने लगे। आवास-परिवर्तन के आवश्यक कारणों में एक कारण था सरलासुन्दरी देवी का पुस्तकों और पत्रिकाओं के प्रति प्रेम। संयुक्त परिवार में उन्हें पढ़ने के लिए पर्याप्त समय कम ही मिल पाता था। अपनी साहित्य-तृषा को बुझाने के लिए उन्होंने बसुमती साहित्य मन्दिर की लगभग सभी पुस्तकें ख़रीद डालीं, उस समय के तीन प्रमुख पुस्तकालयों से पुस्तकें मँगायीं और लगभग सभी प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाएँ एकत्र कीं। सरलासुन्दरी देवी ने ही अपने जीवन के माध्यम से आशापूर्णा के कोमल हृदय में साहित्य के प्रति अनुराग का संचार किया।

तेरह वर्ष की वय में आशापूर्णा ने अपनी प्रथम सर्जनात्मक रचना की, जो 'बाइरेर डाक' शीर्षक कविता थी। इसे उन्होंने प्रकाशन के लिए *शिशुसाथी* में भेजा। यह अविलम्ब प्रकाशित हो गयी। राजकुमार चक्रवर्ती ने, जिनके प्रति आशादेवी कृतज्ञ हैं, इस कविता की प्रशंसा की और उन्हें कहानियाँ लिखने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

यह एक अत्यंत बहुसर्जक रचनात्मक व्यक्तित्व की लेखन यात्रा का

Shrimati Ashapurna Devi on whom the Sahitya Akademi is conferring its highest honour of Fellowhip today, and thus honouring itself, is one of the most eminent litterateurs of Bengali today.

Born on 8 January 1909 at Calcutta, Ashapurna Devi spent her childhood in a large family of about fifty members in the northern part of the city. The family being highly conservative, did not encourage formal education for girls. Ashapurna Devi in her early childhood frequently sat in front of her brothers and watched them reading primers at the top of their voices. She tried to relate the linguistic symbols of the books with the articulations of her brothers and this helped her to acquaint herself with the Bengali alphabet before she reached the age of three. But it created an intriguing situation. She could read books fluently from the opposite but the front visual of the letters left her mum. In the absence of her brothers, the little child sat with the books and thus taught herself the visuals of the letters. As a result, before she reached the age of three, she could read books fluently.

While Ashapurna was still a child, her father Harendranath Gupta shifted to a rented house with his wife Saralasundari Debi, three sons and three daughters. And one of the reasons that necessitated the change of residence was Saralasundari Debi's love of books and journals. In the joint family she could hardly find enough time to read. To quench her thirst for literature, she purchased almost every book of the Basumati Sahitya Mandir, borrowed books from three leading libraries of the time and collected almost all leading literary journals. It was Saralasundari Debi who, through her own life, transmitted the love for literature to the tender heart of Ashapurna.

At the age of thirteen, Ashapurna wrote her first creative piece, a poem, entitled `Bairer Dak' (The Call from the Outside) and sent it to *Sishusathi* for publication. It was immediately published. Rajkumar Chakraborty, to whom she acknowledges a debt of gratitude appreciated the poem and encouraged her to write stories, too, if she could.

This marked the beginning of the odyssey of one of the most prolific creative personalities, who has so far authored 176 novels, 30 collections of short stories, 47 books for

शुभारम्भ था, जिसने अब तक 176 उपन्यासों, 30 कहानी-संग्रहों, 47 बाल-पुस्तकों और 25 अन्य संकलनों की रचना की है। अपनी पहली कविता में उन्होंने घर के अँधेरे कमरे में बंद संकीर्ण वैयक्तिक पहचान से उबरने और बाहर दिन के नये प्रकाश में पदार्पण करने का आह्वान किया है। दूसरों तक पहुँचने की इस इच्छा से ही संभवत: वह बाङ्ला की लगभग सभी प्रमुख बाल-पत्रिकाओं में एक के बाद एक कविता और कहानी लिखती चली गयीं।

1924 में, पन्द्रह वर्ष की वय में उनका विवाह श्री कालिदास नाग के साथ हुआ। उन्होंने अपने पति और ससुरालवालों के साथ पश्चिम बंगाल के नदिया ज़िले के कृष्ण नगर में तीन वर्ष बिताये। उनके ससुराल के लोग अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति के थे और वहाँ अपने इर्द-गिर्द उन्हें जो पुस्तकें मिलीं, उनमें अधिकांश धर्मग्रंथ थीं। तीन वर्ष बाद वे अपने पति के साथ कलकत्ता लौट आयीं।

अट्ठाईस वर्ष की वय में उन्होंने वयस्कों के लिए पहली कहानी लिखी जिसका शीर्षक था 'पत्नी ओ प्रेयसी'। प्रकाशनार्थ उन्होंने इसे *आनंदबाज़ार पत्रिका* में भेजा। वह पत्रिका के 'शारदीय' अंक में प्रकाशित हुई। यह अंतिम रचना थी जिसे उन्होंने स्वयं प्रकाशन हेतु भेजा था।

बच्चों के लिए आपका पहला कथा-संग्रह *छोटो ठाकुरदार काशी यात्रा* 1938 में प्रकाशित हुआ और वयस्कों के लिए पहला कहानी-संग्रह 1940 में। और तब से अपने सर्जनात्मक प्रवास में आप निरंतर आगे बढ़ती गयीं। एक के बाद दूसरी कृति, कभी उपन्यास तो कभी कहानी-संग्रह, आती रही। आपके उपन्यासों और कहानी-संग्रह में *सागर सुखाय जाय* (1946), *मित्तिरबाड़ी* (1947), *कल्याणी* (1954), *निर्जन पृथिबी* (1956), *शशीबाबूर संसार* (1956), *उन्मोचन* (1957), *नेपथ्य नायिका* (1958), *छायासूर्य* (1962), *दोलना* (1963), *प्रथम प्रतिश्रुति* (1964), *सुबर्णलता* (1967), *बकुल कथा* (1974) आदि उल्लेखनीय कृतियाँ सम्मिलित हैं।

आपके उपन्यासों और कहानियों में, मध्यवर्ग के लोगों का घरेलू जीवन उनकी खुशियों और पीड़ाओं के साथ पूरे परिदृश्य पर उभरता है। अपने लेखन में आप अपने अनुभव से परे कम ही जाती हैं। अपने उपन्यासों और कहानियों में आपने जिन चरित्रों को प्रस्तुत किया है, वे वास्तविक प्रतीत होते हैं। आपका कथा-साहित्य पढ़ते हुए लगता है कि उसकी घटनाएँ पाठक या पाठिका के अपने जीवन से उठायी गयी हैं। जीवन के प्रति सचाई और मानवीय अनुभवों के प्रति इनकी ईमानदारी ने इन्हें बाङ्ला के और समस्त भारतीय पाठकों के स्नेह-सम्मान का पात्र बनाया है।

आशापूर्णा देवी के उपन्यासों और कहानियों में नारी की पीड़ा और यंत्रणा को अभिव्यक्ति मिली है। इनके अधिकांश लेखन में हमारे सामाजिक मानस में रंजित यौन-आधारित भेदभाव से पैदा होती असमानता और अन्याय के विरुद्ध साहसिक विद्रोह दृष्टिगत होता है। आधुनिक भारतीय नारी से सम्बन्धित जीवंत मुद्दे उठाते हुए वह विवेक पर आधारित एक नयी सामाजिक व्यवस्था की गुहार करती हैं। आशापूर्णा देवी पाश्चात्य पद्धति के सैद्धान्तिक नारीवाद की समर्थक नहीं हैं। वस्तुत: वह एक ऐसे आदर्श भारतीय घरेलू परिदृश्य का स्वप्न देखती हैं, जिसमें मानव-मूल्यों की पुष्टि करते हुए स्त्रियों को भी वे अधिकार और सुविधाएँ सुलभ हों जो पुरुषों को सुलभ हैं।

children and 25 other collections. In her first poem, she gave a call to escape from the narrow individual identity in the dark chamber of the house and come out into the new light of the day. This desire to reach others, it seems, made her write poems and short stories, one after another, in almost all the leading Bengali journals for children.

In the year 1924, at the age of fifteen, she was married to Sri Kalidas Nag. She spent three years at Krishnanagar in Nadia district in West Bengal with her husband and in-laws. The family was deeply religious and the books which she found around her were mostly scriptures. After three years she returned to Calcutta with her husband.

At the age of twenty-eight, she wrote the first story for adults, captioned `Patni O Preyasi' and sent it to *Anandabazar Patrika*. It was published in the *Saradiya* issue; that was the last writing she sent for publishing on her own.

Her first collection of short stories for children entitled *Chhot Thakurdar Kashi Yatra* (The Departure of Younger Grandfather to Kashi) was published in in 1938 and her first collection of short stories for adults was published in 1940. And since then she has never looked back in her creative sojourn. One book, be it a novel or a short collection, followed another. Her scores of novels and short-story collections include notable works such as *Sagar Sukhaya Jay* (The Sea Dries Up, 1946), *Mittirbari* (The House of the Mittirs, 1947), *Kalyani* (1954), *Nirjan Prithibi* (The Lonely Earth, 1956), *Shashibabur Sansar* (The Household of Shashibabu. 1956), *Unmochan* (The Unveiling, 1957), *Nepathya Nayika* (The Back Stage Heroine, 1958), *Chhayasurya* (The Shadow Sun, 1962), *Dolna* (The Cradle, 1963), *Pratham Pratishruti* (The First Promise, 1964), *Subarnalata* (1967), *Bakul-katha* (The Story of Bakul, 1974), etc.

In her novels and short stories, the domestic life of the middle class people with their joys and sorrows dominates the scene. She seldom goes beyond her experiences in her writings. The characters she has presented in her novels and short stories appear to be true to life. As one reads her fiction, one feels as if the incidents have been culled from his or her own life. The truthfulness to life and honesty to human experiences have endeared her to the Bengali and Indian readers.

In Ashapurna Devi's novels and stories the pain and agony of women find their articulation. Most of her writing marks a spirited protest against the inequality and injustice stemming from the gender-based discrimination ingrained in our social psyche. Addressing issues which are of vital concern to modern Indian women, she makes a fervent appeal demanding a new social order based on sound logic. And Ashapurna Devi does not subscribe to the Western mode of theoretical feminism either. She, in fact, dreams of an ideal Indian domestic scene where women will enjoy the same rights and privileges as the men in affirmation of human values.

प्रथम प्रतिश्रुति, सुबर्णलता और *बकुल कथा* एक त्रयी है और यह आशापूर्णा देवी के कथा साहित्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृतित्व है। अपने विस्तृत फलक में यह त्रयी एक आम बंगाली मध्यवर्गीय परिवार की तीन पीढ़ियों, माँ, बेटी और पौत्री, की जीवन-कथा प्रस्तुत करती है। तीनों के जीवन की समाप्ति दुखद है। आशापूर्ण देवी की कृतियाँ दिखाती हैं कि नयी स्वाधीन नारी के प्रति उदासीन समाज-व्यवस्था किस प्रकार शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही स्तरों पर उसे क्षत-विक्षत कर रही है। कभी-कभी वे एकाकी छोड़ दी जाती हैं, कोई भी उन्हें समझने की तकलीफ़ नहीं उठाता, जैसा कि सुबर्णलता के साथ हुआ। अपने माता-पिता, पति, बेटे-बेटियों सहित सभी के द्वारा तिरस्कृत अन्ततः वह एक अजनबी होकर रह जाती है।

आशापूर्णा देवी को अपने साहित्यिक अवदान के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। आपको 1954 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के लीला पुरस्कार से, 1966 में उसी विश्वविद्यालय से भुवनमोहिनी दासी स्वर्ण पदक से, 1966 में ही पश्चिम बंग सरकार के रवीन्द्र स्मृति पुरस्कार से, 1976 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से, 1988 में बंगीय साहित्य परिषद द्वारा हरनाथ घोष पदक से और 1993 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से जगत्तारिणी स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। 1976 में आपको भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से अलंकृत किया गया। 1983, 1987, 1988, और 1990 में क्रमशः जबलपुर, रवीन्द्र भारती, बर्दवान और जादवपुर विश्वविद्यालयों द्वारा आपको डी. लिट् की मानद उपाधि प्रदान की गयी। 1989 में विश्वभारती विश्वविद्यालय ने आपको देशिकोत्तम उपाधि से सम्मानित किया।

एक उपन्यासकार और कहानी-लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित श्रीमती आशापूर्णा देवी को साहित्य अकादेमी अपना सर्वोच्च सम्मान *महत्तर सदस्यता* प्रदान करती है।

Pratham Pratishruti, Subarnalata and *Bakul-Katha* form a trilogy, the *magnum opus* of Ashapurna Devi's fiction. In its vast canvas, the trilogy presents the life of three generations/mother, daughter and grand daughter/ of a typical Bengali middle class family. All the three end their life tragically. Ashapurna Devi's works show how a social system apathetic to the new independent women mauls them both physically and mentally. Sometimes they are left alone, no one bothers to understand them. As it has been with Subarnalata. She ends up as an outsider, rejected by all including her parents, husband, sons and daughter.

Ashapurna Devi has been widely honoured with a number of prizes and awards. She received the Lila Prize from the University of Calcutta in 1954, the Bhuban Mohini Dasi Gold Medal from the same university in 1966, the Rabindra Memorial Prize from the Government of West Bengal in 1966, the Jnanpith Award in 1976, the Haranath Ghosh Medal from the Bangiya Sahitya Parishad in 1988 and the Jagattarini Gold Medal from the University of Calcutta in 1993. She was awarded Padmashree by the Government of India in 1976. She has been conferred the D.Litt (honoris causa) by the Universities of Jabalpur, Rabindra Bharati, Burdwan and Jadavpur in 1983, 1987, 1988 and 1990 respectively. Visva Bharati University honoured her with Desikottam in 1989.

For her eminence as a novelist and short story writer, the Sahitya Akademi confers its highest honour the Fellowship, on Shrimati Ashapurna Devi.